उत्तराखंड में जलपूजा

डॉ. सुरेन्द्र दत्त सेमल्टी
हिंडोलाखाल, टिहरी गढ़वाल

उत्तराखंड आदि काल से आस्तिक रहा है, यही कारण है यहां आज भी असंख्य मठ/मन्दिर विराजमान हैं, जो विभिन्न देवी/देवताओं के निवास स्थान हैं। पितृ देवो भवः अतिथि देवो भवः के मार्ग पर चलने वाला यह क्षेत्र प्राकृतिक शक्तियों का भी उपासक रहा है। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जल, वायु आदि को पूजना यहां के लोगों ने अपना पुनीत कर्तव्य माना है। पूजा हमेशा उसी की होती है, जो अपने महान गुणों (विशेषताओं) से दूसरों की सहायता करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि उत्तराखंड में अति प्राचीन काल से विभिन्न रूपों, विधियों से जल की स्तुति होती रही है।

यह तो सर्व विदित है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त यह पदार्थ मात्र मानव के लिये ही नहीं अपितु सभी पशु–पक्षियों, कीट–पतंगों एवम् वनस्पतियों के जीवन का भी आधार है। बिना जल के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इसीलिए तो कहते हैं।–"जल ही जीवन है"।

जहां तक उत्तराखंड का सवाल है, यहां के जन मानस द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में जल का उपयोग किया जाता है, जिसके लिये वह आन्तरिक रूप तथा बाह्य रूप से उसके गुणों का गान करता है। कुछ कार्य तो ऐसे हैं जिनमें विधान के साथ जल की पूजा की जाती है लेकिन सामान्यतः जब कोई व्यक्ति स्नान करता है तो शरीर पर जल का स्पर्श होने पर अनायास ही उसके मुंह से ये वाक्य निकल पड़ते हैं–

"गंगे च यमुने चैव, गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी, जलेस्मिन् संनिधिम् कुरू।"

उपरोक्त श्लोक में यहां की उन पवित्र नदियों के नाम गिनकर गुणगान किया गया है जो सम्पूर्ण प्राणिमात्र का अनेक प्रकार से कल्याण करती हैं।

हमारे हिन्दू समाज में जिन मुख्य संस्कारों एवम् अन्य अनेक धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने का विधान है, उन सभी में निर्दिष्ट स्थान पर जल की विधि–विधान के साथ पूजा की जाती है। चूड़ा–कर्म, विवाह, पूजा–पाठ, पितृ पूजन (तर्पण) आदि अनेक कार्यों में सर्व प्रथम– "अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोंपिवा, यस्मरेत पुण्डरी काक्षं स बाह्य आभ्यन्तरः शुचिः। मंत्र का उच्चारण करते हुये शरीर की बाह्य एवम् आन्तरिक शुद्धि के निमित्त शरीर पर जल छिड़का जाता है तथा आचमनी पी जाती है, साथ ही "सर्वे समुद्रा सरितस्तीर्थानि जलदानदा, आयन्तु मम कार्यस्य दुरिताः क्षय कारका।" बोलकर अपने कार्य की निर्विघ्नता के लिये सभी समुद्रों और नदियों का आवाह्न किया जाता है। इतना ही नहीं उदकुम्भ (कलश) में जल भरकर उसमें विभिन्न देवों, वेदों, समुद्रों आदि के आवाह्न के निमित्त हाथ से स्पर्श कर यह उच्चारण किया जाता है–

ओम कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रूद्रः समाश्रितः
मूले तस्य स्थितों ब्रहमा मध्येमातृगणाः स्मृताः।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।।
अंगैश्च सहिताः सर्वे कलश तु समाश्रिताः।

और इस प्रकार से आवाह्न करने के पश्चात् हाथ जोड़कर प्रार्थना की जाती है–

देव दानवसंवादे मथ्य माने महोदधौ।
उत्पन्नोसि तदा कुम्भ! विधृतो विष्णुना स्वयम्।।
त्वत्प्रसादादिम यज्ञ कर्तुमीहे जलोद्भव।
सानिध्य कुरू मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा।।
नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमंड़गलाय।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते।।

उत्तराखंड में यह परम्परा है कि जब किसी स्त्री का प्रसव होता है तो उसे अपवित्र मानकर एक माह तक अन्यों के उपयोग में आने वाले जल पर नहीं लगने दिया जाता है, तब लगभग एक माह के व्यतीत होने पर हवन/पूजन के द्वारा उसकी शुद्धि की जाती है, जल का पूजन किया जाता है। तब जाकर वह स्त्री अन्यों के समकक्ष हो जाती है। आंचलिक बोली में इस क्रिया को "पानी पर लगना" कहते हैं।

यह एक विचारणीय बिन्दु है कि जल की पूजा क्यों की जाती है? या यों कहें कि अपने कल्याण के लिये जल से प्रार्थना क्यों करते हैं? उसके उत्तर में कहा जा सकता है कि जो वस्तु जितने लायक होती है उससे उसी प्रकार की अपेक्षा की जाती है। जल स्नान, पान आदि के द्वारा प्राणि मात्र का अनेक प्रकार से कल्याण करता है, इसलिये उसकी पूजा की जानी स्वाभाविक ही है। तभी तो ज्ञानी जन अपने बांये हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से जल को अपने विभिन्न अंगों पर यह कहते हुये छिड़कते हैं–

ओम आपो हिष्ठा मयोभुवः! ओम तान ऊर्जेदधातन....। अर्थात हे जल देवता तुम हमारे लिये अपने श्रेष्ठ दर्शन के लिये स्थापित हो जाओ तथा इस पृथ्वी लोक में तुम्हारा जो कल्याणकारी रस विद्यमान है उस रस का भागी हमें बनाओ। हम आपसे ऐसी प्रार्थना करते हैं।

इसी प्रकार कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्यानों द्वारा स्वयं तथा अन्यों को भी "ओम द्रुपादादिव मुमुचानः स्विन्न स्त्रायो मलादिव। पूतं पवित्रेणैवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः। "मंत्र का उच्चारण करने एवम् कराने का परामर्श दिया जाता है, जिसमें मस्तक पर जल छिड़कते हुये, जल देवता से अपने को पापों से मुक्त करने की प्रार्थना की जाती है।

उत्तराखंड अनेक नदियों का मायका है। इसके मस्तक पर विराजमान गिरिराज हिमालय से निकलने वाली अनेकों छोटी–बड़ी नदियां यहां के जनमानस का अनेक प्रकार से कल्याण करती हुई आगे बढ़ती हैं, लेकिन खेद है इस बात का कि ये पवित्र नदियां अपने ही मायके में अल्प जीवन रूपी मार्ग में चल कर अपवित्र होती जा रही हैं, लेकिन इसमें देाष नदियों का नहीं हमारा है, जो हम अनेक प्रकार से उन्हें प्रदूषित कर रहे हैं।

जहां एक ओर जाने–अनजाने में हमसे जल प्रदूषित हो रहा है, वहीं दूसरी ओर जल के प्रति श्रद्धा–भक्ति में किसी भी प्रकार की कमी दृष्टिगोचर नहीं होती, क्योंकि यहां के विभिन्न नदी तटों, संगमों, तीर्थस्थलों एवम् घरों में गंगा जल या सामान्य जल में स्नान करते हुये अनेक साधू–सन्त एवम् गृहस्थी– "सघ पातक संहर्त्री सद्योदुःख विनाशिनी। सुखदा मोक्षदागंगा गंगैव परमा गतिः।" का उच्चारण करते हुये गंगा माता को अनेक प्रकार से मनुष्यों का कल्याण करने वाली बतलाकर उसका गुणगान करते हैं, साथ ही ध्यानावस्थित होकर गंगा का ध्यान करते हुये इन शब्दों में जल पूजा के भाव व्यक्त करते हैं–

"गंगे–गंगे नमस्तभ्यम् मातर्मतिनमोनमः।
कृपया देहि में नित्यम् त्वयि निष्ठा अखण्डिताय्।।
ओम नमामिगंगे तव पाद पंकजम्,
सुरा सुरैर्वन्दित दिव्य रूपम्

मुक्ति च मुक्ति च ददासि नित्यम्,
भावानुसारेण सदा नराणाम्।।

उत्तराखंड में जल से भरा वर्तन शुभ–शकुन माना जाता है। यदि यात्रा के समय मार्ग में कोई सौभाग्यवती स्त्री जल से भरे बर्तन लेकर मिले तो, लोग कह उठते हैं कि जिस काम से हम जा रहे हैं, वह अवश्य सफल होगा। शादी के अवसर पर भी कन्या ग्रह में प्रवेश करते समय अभिमन्त्रित जल को बारातियों पर छिड़कना भी मंगल का प्रतीक माना जाता है।

देव भूमि उत्तराखंड में जल पूजा का सबसे महत्वपूर्ण दृश्य वह होता है, जब प्रत्येक नवविवाहिता वधू वर के घर पहुंचने के दूसरे दिन प्रातः गांव की लड़कियों, सौभाग्यवती स्त्रियों आदि के साथ गांव के जल श्रोत में जाकर वहां पर रौली, अक्षत, पुष्प आदि से पूजा करती है, सबका तिलक कर मुंह मीठा करवाती है, तथा एक बर्तन (बण्ठा, गागर) जल से भरकर अपने सिर में रखकर घर लाती है, तथा उस बर्तन के जल को घर के सभी लोग एवम् इष्ट–मित्र गण बड़ी प्रसन्नता के साथ पीते हैं। आंचलिक बोली में इस को ''धारा पूजना'' कहते हैं। यहां के विभिन्न क्षेत्रों में थोड़े–बहुत अन्तर के साथ विवाह संस्कार के अन्तर्गत इस रस्म को अवश्य सम्पन्न किया जाता है।

कितनी महान परम्परा है उत्तराखंड की यह कि सर्व प्रथम नव विवाहिता द्वारा उस जल की पूजा करवाई जाती है, जिस प्राकृतिक देवता के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस क्रिया के पीछे जहां एक ओर वधू अपने इन भावों को व्यक्त करती होगी कि हे जल रूपी ग्राम देवता तुम हमेशा हमें अपना सहयोग प्रदान करते रहना वहीं दूसरी और अन्यों के साथ गांव के जल श्रोत (धारे, कुएं आदि) में जाकर उसे वहां तक जाने के मार्ग की भी जानकारी हो जाती है।

प्राचीन काल में जब राजा–महाराजा जन कल्याण के निमित्त कुएं खुदवाते थे, नहरों का निर्माण करवाते थे तो सर्व प्रथम उस स्थान पर जल देवता की पूजा की जाती थी, साथ ही कार्य सम्पन्न होने पर भी पूजन का आयोजन किया जाता था।

आज परिस्थितियां बदल गई हैं। गांवों में प्राकृतिक जलस्रोत सूखते जा रहे हैं। अब अधिकांशतः लोहे के पाइपों द्वारा दूर–दराज से पानी लाकर सीमेंट की टंकियों में इकट्ठा किया जाता है। लेकिन एक समय ऐसा था जब लगभग प्रत्येक गांव में पानी के धारे/कुएं होते थे, उन धारों को किसी स्थानीय शिल्पी द्वारा दोनों तरफ से सुन्दर कटवां पत्थरों की दीवार खड़ी कर ऊपर अच्छी तरह से तरासे गये समतल पत्थर रखे जाते थे, ताकि लोग अपने बर्तनों को आसानी से सिर पर उठा सकें। नीचे भी ऐसे ही चौड़े–चौड़े समतल पत्थर रखे जाते थे, जिससे कि कपड़े आसानी से धोएं जा सकें। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि दोनों दीवारों के मध्य जल स्रोत पर किसी मोटे गोलाकर पत्थर को तराशकर उस पर किसी पशु पक्षी या देवता की आकृति उकेर कर उस पत्थर के बीच में छेद किया जाता था, जिसके रास्ते मूल स्रोत का जल बाहर निकलता था। स्थानीय बोली में उसे मगरा कहते हैं। हर एक पानी भरने वाला सर्वप्रथम उसको धोता और जाने–अनजाने शब्दों को गुनगुनाकर जल देवता की पूजा करना अपना पुनीत कर्तव्य मानता था।

यद्यपि आज भी अनेक गांवों में मगरे दृष्टिगोचर होते हैं, जिनमें कुछ तो पूर्ण रूप से सूख चुके हैं, और कुछ सूखने की कगार पर खड़े अपने–जीवन की अन्तिम घड़ियों को गिन रहे हैं। मानों कि ये लोगों को अपने अतीत की याद दिलाना चाहते हों।

यूं तो जल पूजा कहीं भी और कभी भी की जा सकती है, लेकिन शास्त्रों में यह भी उल्लेख आया है कि जेठ के महीने के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अति प्राचीन काल से गंगा

दशहरा मनाने की परम्परा है, क्योंकि ऐसी मान्यता है लोक कल्याण की कामना से इसी दिन मां भगवती गंगा आकाश से पृथ्वी पर अवतरित हुई थी। इसलिये इस पावन पर्व पर मां गंगा के दर्शन करने, उसके पवित्र जल को पीने एवम् उसमें स्नान करने से दस प्रकार के पाप नष्ट होते हैं। जैसा कि ब्रह्म पुरण में कहा गया है–

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्त संयुता।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता।।

इस पुनीत पर्व पर उत्तराखंड के आस्तिक जन गंगा के पवित्र तट पर अपने मन में मां गंगा का ध्यान कर "ओम नमः शिवायै दशहरायै गंगायै स्वाहा," जै गंगा माता, जै गंगा माता जैसे मंत्रों को जपकर जल पूजा करते हैं। साथ ही दस प्रकार के फल–फूल, धूप, दीप से पूजा कर घी मिले हुये तिलों की दस अंजलियां तथा गुड़ और सत्तू के दस पिण्ड बनाकर विधि–विधान के साथ गंगा नदी में अर्पित करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं।

इस क्षेत्र में एक प्राचीन परम्परा यह भी है कि जब बहुत दिनों तक वर्षा नहीं होती है, जिसके परिणाम स्वरूप जहां एक ओर फसल चौपट होने लगती है, वहीं दूसरी ओर जल स्रोत सूखने से पीने के पानी के लिये भी त्राहि–त्राहि मचने लगती है, तब विभिन्न गांवों के लोग अपने–अपने रिवाज के अनुसार पृथक–पृथक नामों से पुकारे जाने वाले स्थान देवता, ग्राम देवता, कुलदेवता या किसी स्थान विशेष में जाकर भजन कीर्तन, पशु बलि देकर या मनुष्य के शरीर से कुछ खून की बूंदे देव प्रतिमा के ऊपर टपकाकर ढोल–दमाऊं वाद्ययंत्रों को बजाते हुये स्थानीय रिवाज के अनुसार इन्द्र देवता, वरूण देवता आदि की पूजा करते हैं, जो जल पूजा का ही एक रूप है। अक्सर देखा गया है कि ऐसा करने पर कभी तो मुसलाधार और कभी सामान्य वर्षा होती है। लेकिन धीरे–धीरे यह परम्परा लुप्त होती जा रही है।

उत्तराखंड लोक साहित्य में भी यत्र–तत्र जल पूजा के उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदाहरण के रूप में प्रस्तुत गढ़वाली गीत में गंगा महिमा का वर्णन कर जल की पूजा की गयी है–

गंगा माई गाडू रिंग्या ओद, गंगा माई इनी मातमी माई। त्वैन उत्पई लीने हिमालैका गोद।
गंगा जी रीटी जाली काई, विष्णु चरण से छूटी शिव जटा समाई।

गंगा जी कागजु की स्याई, भगतु का खातिर माता मृत्यु मण्डल आई।
गंगा जी औंलू को अचार, पंचनाम देवमाता, करदा जै–जै कार।
गंगा माई इनी मातमी माई, करदा जे–जैकार।।

उत्तराखंड के कुछ इने–गिने क्षेत्रों में एक ऐसा मेला लगता है, जिसमें मछलियों को मारा जाता है। इस मेले को "मौण" नाम से पुकारा जाता है। इस अवसर पर नदी के तट पर उस क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्ति–सयाणा द्वारा टिमरू प्रजाति की वनस्पति के बीजों के चूर्ण से जल की पूजा की जाती है, उस चूर्ण का एक दूसरे पर तिलक भी लगाया जाता है। इस परम्परा का मुख्य उद्देश्य जो कुछ भी हो लेकिन इतना स्पष्ट है कि किसी न किसी रूप में इस अवसर पर जल की पूजा की जाती है।

आज आवश्यकता इस बात की अनुभव की जा रही है कि हम सब लोग संकल्प लें कि हम जल को प्रदूषित नहीं होने देंगे, उसका सही ढंग से पूर्ण उपयोग करेंगे। आज के परिप्रेक्ष्य में यही सच्ची जल पूजा है।